वीर संवत २४९२, आषाढ़ शुक्ल १, रविवार, दिनाङ्क १९-०६-१९६६
गाथा २९ से ३२ प्रवचन नं. १२

यह योगसार शास्त्र है। योगीन्द्रदेव एक मुनि हुए हैं। दिगम्बर सन्त.... अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थङ्कर भगवान का कथित मार्ग, उसे यहाँ योगसाररूप से वर्णन करते हैं। २९ वीं गाथा। २९ वाँ श्लोक है न? **मिथ्यादृष्टि के व्रतादि मोक्षमार्ग नहीं है।**

वय-तव-संजम-मूलगुण, मूढहँ मोक्ख ण वुत्तु।
जाव ण जाणइ इक्क पर, सुद्धउ भाउ पवित्तु॥२९॥

क्या कहते हैं? जब तक यह आत्मा, द्रव्य-वस्तु और उसका भाव परम शुद्ध है। शरीर, वाणी, मन तो यह पर-जड़ है; अन्दर शुभ-अशुभभाव होते हैं, वह विकार-मलिन है। उनसे रहित आत्मा का स्वभाव (है)। आत्मवस्तु तो परम शुद्ध, परम निर्मल, उसका पवित्र भाव अन्दर स्वरूप में है। ऐसे आत्म-भाव का अनुभव न करे.... भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन आत्मा पवित्र आनन्दकन्द है – ऐसे आत्मा का अन्तर्मुख होकर, आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन और उस आत्मा का आचरण-अनुष्ठान.... जहाँ तक ऐसा अनुभव न करे, तब तक मूढ़ जीवों के, अज्ञानी जीवों के किये हुए व्रत – यह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालता हो, वह सब निरर्थक-राग की मन्दता का एक शुभराग है। समझ में आया?

भगवान आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थङ्कर ने कहा, वैसा यह आत्मा अत्यन्त पवित्र शुद्ध आनन्द, सच्चिदानन्द और ज्ञायक अनाकुल शान्तरस से भरा हुआ, यह आत्मतत्त्व है। ऐसे भगवान आत्मा की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका अनुभव, जब तक नहीं करे, तब तक अज्ञानी मूढ़ जीव के.... मूढ़ अर्थात् स्वरूप के अनजान जीव के...

समझ में आया ? आत्मा वीतरागमूर्ति है। स्वरूप से शुद्ध अविकारी स्वभाव आत्मा है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव न करे और मूढ़ जीव, व्रत पालन करे; वस्तु के स्वभाव से अनजान (मूढ़ जीव) अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन करे, वह मोक्षमार्ग नहीं; वह बन्धमार्ग है, वह संसार में भटकनेवाला जीव है। समझ में आया ? व्रत, तप....

आत्मा चैतन्यमूर्ति शुद्धरस आनन्दकन्द है – ऐसी चीज का जहाँ अन्तर्मुख अनुभव, श्रद्धा, ज्ञान नहीं और वह स्वयं अनशन, उनोदर करे, आहार छोड़े, महीने-महीने के अपवास करे, रस छोड़ दे, दूध, दही, खाँड-शक्कर नहीं खाये – वे सब उसके तप निरर्थक हैं। समझ में आया ? यह आत्मा ज्ञायक चैतन्यस्वरूप, भगवान परमेश्वर ने जो पर्याय में प्रगट किया अवस्था में – दशा में प्रगट हुआ। क्या कहा ? यह आत्मा, देह में विराजमान चैतन्यरत्न, जिसमें अनन्त गुण का शुद्धपना भरा है – ऐसे आत्मा का जिसे अन्तरसन्मुख का अनुभव – सम्यग्दर्शन, ज्ञान नहीं – ऐसे जीव.... 'मूढ़' शब्द प्रयोग किया है न ? मूढ़। वस्तु ज्ञाता-दृष्टा अनन्त आनन्दादि शुद्धस्वरूप से भरपूर (है), उसका भान नहीं; इस कारण मूढ़ जीव, फिर भले ही वह व्रत, तप करे, विनय करे – देव-गुरु-शास्त्र की बहुत विनय करे, यात्रा करे, भक्ति करे, पूजा करे – यह सब उसके धर्म के खाते में नहीं है, वे सब शुभभाव बन्ध के लिये हैं, संसार के खाते में है। समझ में आया ? क्योंकि परमात्मा-निज स्वरूप में आनन्द और शुद्धता पड़ी है, उसे स्पर्शे नहीं, उसे स्पर्शे नहीं और मूढ़ अपने निज स्वभाव से अनजान, ऐसे विनय करे, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति; विनय, पूजा, नाम स्मरण करे – वे सब शुभरागरूपी पुण्य है, धर्म नहीं। उसे धर्म नहीं होता। समझ में आया ? वह देव-गुरु-शास्त्र की वैयावृत्ति करे, सेवा करे परन्तु जिसे आत्मसेवा का पता नहीं कि मैं एक ज्ञानानन्द चिदानन्द शुद्ध ध्रुव अनादि-अनन्त पवित्र अनन्त शान्ति की खान-खजाना आत्मा हूँ; पूर्ण आनन्द जो परमात्मा को – सर्वज्ञदेव को प्रगट हुआ है, उस पूर्णानन्द का धाम आत्मा स्वभाव से है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे स्पर्श, स्पर्श नहीं – अनुभव नहीं, (उसे) छूता नहीं, सन्मुख नहीं – ऐसे मूढ़.... स्वभाव से अजान जीव के देव-शास्त्र-गुरु की सेवा का भाव भी उसे संवर और निर्जरा में नहीं है; बन्ध में है। उसमें बन्ध होकर वह चार गति संसार में भटकनेवाला है। रतनलालजी ! कठिन बात, भाई ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा सत्.... सत्... सत्.... शाश्वत् ज्ञान और आनन्द की खान प्रभु आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द के भान और स्पर्श बिना जो कुछ शास्त्र की स्वाध्याय करे... यह तप के बोल में आता है। रात्रि में इसका जरा-सा चला था। यह अन्य कहते हैं न कि हम सज्झाय करते हैं न! अरे! भगवान! भाई! सुन रे प्रभु! यह चिदानन्द की मूर्ति शाश्वत् आनन्द की खान आत्मा है। शाश्वत् – अकृत, अविनाश – ऐसा तत्त्व अनन्त स्वभाव के, शुद्धस्वभाव से भरा हुआ भण्डार भगवान है। ऐसे आत्मा को अन्तर्मुख में स्पर्श बिना, बहिर्मुख की इतनी वृत्तियाँ.... शास्त्र-स्वाध्याय करे, ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़े.... स्वाध्याय करे, रात-दिन शास्त्र... शास्त्र... शास्त्र – यह सब विकल्प पुण्य-राग है, यह धर्म नहीं है।

मुमुक्षु – भले ही धर्म नहीं, परन्तु निर्जरा तो सही न?

उत्तर – धर्म नहीं, फिर निर्जरा कहाँ से आयी? समझ में आया? संवर, निर्जरा नहीं। देखो! व्रत, तप कहा है या नहीं?

भगवान आत्मा....! भाई! यह चैतन्यरत्न है। प्रभु! इसे पता नहीं है। यह देह, वाणी, मन तो मिट्टी, जड़, धूल है। अन्दर कर्म हैं – आठ कर्म; जिसे नसीब कहते हैं, वह धूल, मिट्टी, जड़ है और यह हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग की वासना – यह पाप है। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, विनय के ऐसे विकल्प उत्पन्न हों, वे पुण्य हैं; वे कोई आत्मा नहीं। ऐसे पुण्य-पाप के रागरहित भगवान आत्मा वस्तु शाश्वत् नित्य ध्रुव है। उसे स्पर्शे बिना मूढ़ जीव ऐसी स्वाध्याय करे और विनय करे.... समझ में आया? उसके – मूढ़ के सब व्रत हैं-वृथा हैं। समझ में आया? आहा...हा...! स्वसन्मुख के भान बिना परसन्मुख से हुए सभी विकल्प की जाल, पुण्य या पाप – ये दोनों बन्ध का ही कारण है। रवाणी! आहा...हा...!

कहते हैं कि **वहाँ तक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी....** मूढ़... मूढ़ कहा है न? उसके व्रत, उसका तप.... लो! प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, सज्झाय, ध्यान करे, आँखें बन्द करके ध्यान (करे), परन्तु किसका ध्यान? आँख बन्द करके बैठे परन्तु आत्मा एक समय में अखण्डानन्द प्रभु सत् की खान है। सत् शाश्वत् अनादि-अनन्त अकृत्रिम शाश्वत् पदार्थ-तत्त्व है। उसमें शाश्वत् शान्ति और शाश्वत् आनन्द अन्दर पड़ा है। समझ में आया?

ऐसा शाश्वत् भगवान आत्मा और शाश्वत् उसका शान्ति और आनन्द का जो भाव, उसके स्पर्श के भान बिना जितने ये सब स्वाध्यायादि करते हैं... समझ में आया ? उपदेश देते हैं, पूछते हैं, प्रश्न करते हैं.... समझ में आया ? पर्यटना करते हैं, बारम्बार करते हैं, आँख बन्द करके बैठते हैं। इनके सब अकेले पुण्यबंध के कारण हैं। भगवान आत्मा वस्तु से अबन्धस्वरूप है, उसके ऐसे परिणाम से उसे बन्धन होता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? बल्लभदासभाई ! बहुत कठिन... उसमें अभी की आहा... हरिफाई में सब ऐसे के ऐसे चले हैं न ? धर्म के नाम पर विपरीतता पोषते हैं। आहा...हा... !

भगवान ! यह वस्तु है न प्रभु ! आत्मा है, वह शाश्वत् है न ? और उसके स्वभाव शान्ति, आनन्द वह ध्रुव शाश्वत् है न ? उसके गुण जो हैं, वह स्वयं शाश्वत् ध्रुव और उसके गुण भी शाश्वत् ध्रुव... उसमें गुण में तो ज्ञाता-दृष्टा, आनन्द और वीतरागता से भरा हुआ यह भगवान है। इसके अन्तर स्पर्श बिना उसकी सन्मुखता की दृष्टि के बिना मूढ़ इसके स्वभाव के अपरिचय से जितना ऐसा क्रियाकाण्ड व्रत, तपादि करे... समझ में आया ? वह मोक्ष का उपाय नहीं है। वह आत्मा को छूटने का उपाय नहीं है; वह बँधने का और भटकने का उपाय है। आहा...हा... ! प्रवीणभाई ! महावीर... महावीर... महावीर... महावीर... महावीर... महावीर... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... (करते हैं)। कितनों को ही आदत पड़ गयी होती है, वह तो एक राग-विकल्प है। शुभराग है, परलक्ष्यी वृत्ति है। शुद्धस्वरूप अन्दर है, उसके भान बिना ऐसे भाव उसे संवर और निर्जरा का कारण नहीं है; बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु – अभिमुख होने के साधन तो हैं न ?

उत्तर – जरा भी अभिमुख होने का साधन नहीं है। कहो, इस राग की दिशा पर तरफ की है, और स्वभाव की दिशा अन्तर्मुख की स्व की है; इसलिए पर तरफ की दिशा का भाव, स्व-तरफ की दिशा में मदद करे – यह तीन काल में नहीं हो सकता। क्या कहा फिर ?

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति शाश्वत् आनन्दमूर्ति ! आहा...हा... ! जिसने – भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द लबालब भरा है – ऐसे आनन्द को स्पर्श किये

बिना, ऐसे आनन्द को जानकर, अनुभव करके प्रतीति किये, बिना जितने ऐसे भाव व्रत, नियम के आदि के होते हैं, वे परसन्मुख की झुकाववाली वृत्तियाँ, आत्मा को अन्तर्मुख होने के लिए जरा भी मददगार नहीं है। कहो, समझ में आया या नहीं? ऊपर कमरे में जाना हो, हॉल होवे और हॉल बीच में? ऊपर कमरा और नीचे तलघर। ऊपर जाना हो तो थोड़ा तलघर में उतरे वह ऊपर जाने में कोई मदद करेगा या नहीं? समझ में आया? बीच में हॉल, नीचे तलघर, ऊपर कमरा; कमरे में चढ़ने की सीढ़ियाँ या थोड़ा चढ़ने में नीचे उतरे तो वह मदद करेगा या नहीं?

मुमुक्षु – वे सीढ़ियाँ तो.....

उत्तर – वह तो वह सीढ़ियाँ.... यह तो स्व-सन्मुख के आये यह तो स्व-सन्मुख की दृष्टि, स्व-सन्मुख का ज्ञान और स्व-स्वरूप की रमणता, यह सीढ़ियाँ हैं। आहा...हा...! भगवान परमानन्द का नाथ प्रभु का स्पर्श किये बिना ऐसी राग की क्रियाएँ मोक्षमार्ग नहीं है – ऐसा कहते हैं।

शुद्धोपयोग की भावना न भा कर और शुद्ध तत्त्व का अनुभव न करके जो कुछ व्यवहार चारित्र है, वह मोक्षमार्ग नहीं है। देखो, इन्होंने लिखा है – शीतलप्रसादजी ने। **संसारमार्ग है....** आहा...हा...! कठिन बात, भाई! परन्तु स्त्री-पुत्र के लिए करते हों, दुकान के लिए करते हों, वह तो पाप। हैं? तब तो संसारमार्ग (कहो) ठीक है.... परन्तु यह दया, दान, व्रत, भक्ति...? परन्तु भाई! तुझे पता नहीं है, प्रभु! यह बहिर्मुख झुकाववाली वृत्तियाँ हैं, अन्तर्मुख परमात्मा स्वयं निजानन्द से भरपूर है, उसके सन्मुख से विमुख है, इन विमुख वृत्तियों के भाव से आत्मा को पुण्य और संसार ही है। कहो, बल्लभदासभाई! क्या करना यह? सबने विवाद उठाया... पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

यह इनके अट्ठाईस मूलगुण.... साधु होवे और अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, एक बार आहार, खड़े-खड़े आहार ले, नग्नपना-अचेलपना, सामायिक, छह आवश्यक के विकल्प – ऐसे अट्ठाईस मूलगुण पालन करे तो भी वह संसार और पुण्यवर्धक है। आहा...हा...! भगवान! तेरे पास कहाँ पूँजी कम है? जहाँ आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानपने

को प्राप्त करे, अनन्त आनन्दादि दशा को अरहन्त, सिद्धपने प्राप्त हुआ, उन सब निर्मल दशाओं की खान तो आत्मा है। वे दशाएँ कहीं बाहर से नहीं आती हैं।

भगवान आत्मा एक समय में सत्... सत्... सत्... सत्.... चिदानन्द... चिदानन्द.... ज्ञान आनन्दादि अनन्त शक्तियों का रसकन्द है। उसका जहाँ अन्तर आदर नहीं, सन्मुखता नहीं, सावधानी नहीं, रुचि नहीं, उसको ज्ञेय करके ज्ञान नहीं, उसमें ज्ञेय करके स्थिरता नहीं, वहाँ तक सब बाहर के व्रत-तपादि चार गति में भटकानेवाले हैं। समझ में आया?

समयसार में कहा है न? वह दृष्टान्त दिया है। **वदसमिदी गुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहिं पण्णत्तं।** बन्ध अधिकार में आता है न? अभव्य (यह सब) करता हुआ भी अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। ऐसे व्रत पाले, तप करे.... भाई! उस तप की व्याख्या क्या? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से शोभित तत्त्व है, तत्त्व है; उसके अन्तर में एकाग्र होकर अतीन्द्रिय आनन्द का शान्ति का सागर अन्दर से उछले और जैसे गेरुँ से सोना सुशोभित होता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान आत्मा की एकाग्रता से उसकी दशा में अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय में – अवस्था में बाढ़ आवे उसका नाम भगवान तप कहते हैं। समझ में आया? यह सब व्याख्या कैसी! ऐ... ई...! समझ में आया?

जिस जाति का आत्मा का भाव है, उस जाति का भाव उसकी दशा में प्रगट हो, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। उस जाति के भाव से विपरीत भाव (होवे), वह सब संसार के खाते में, पुण्य के खाते में है। स्वर्ग मिले या धूल की सेठाई मिले, सब भटकनेवाले हैं।

मुमुक्षु – ठीक है।

उत्तर – क्या ठीक? हैं? नग्न सत्य है, आहा...हा...! इसमें समझ में आया?

एक ओर राम और एक ओर गाँव.... एक ओर प्रभु अनन्त गुण का आतमराम, अनन्त गुण का आतमराम.... उसकी सन्मुखता, उसके सन्मुखता का ज्ञान, उसकी प्रतीति और स्वसन्मुखता के स्वरूप का आचरण, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है, यह संवर और निर्जरा है। इससे विरुद्ध जितने भाव होते हैं, सम्यग्दृष्टि के भी जितने विमुख भाव (होते

हैं), वे भी बन्ध का कारण हैं। यहाँ तो मिथ्यादृष्टि की बात ली है, क्योंकि वस्तु से अनजान – ऐसा लेना है। **मूढह** कहा है न? समझ में आया? मूढ़ह – गाथा में मूढ़ शब्द पड़ा है न?

ओ...हो...हो...! सब जाना परन्तु तूने भगवान आत्मा नहीं जाना। महाप्रभु विराजमान है, चैतन्य प्रभु, चैतन्य रत्नाकर। चैतन्य में अनन्त रत्न हैं। जैसे, समुद्र में रत्न के ढेर पड़े हैं, स्वयंभूरमण समुद्र में तो अकेले रत्न भरे हैं, रेत के बदले रत्न हैं, परन्तु वहाँ काम के किसे हैं? वहाँ लेने भी कौन जाये? इसी प्रकार यह भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वस्तुरूप से अरूपी आनन्दघन दल चैतन्यदल है, उसमें अनन्त शान्त और वीतरागता के रत्न अनन्त भरे हैं, ऐसे चैतन्यरत्न की अनुभव-दृष्टि के बिना, अर्थात् उसकी महिमा और बहुमान अन्तर्मुख किये बिना बाह्य में जितने व्रत -तपादि किये जाते हैं, वे सब संसार के खाते में हैं। समझ में आया? पैसा-वैसा यह धूल मिले, भूत, देव-वेव हो, चार गति में भटकेगा। कहो, समझ में आया? बल्लभदासभाई! आहा...हा...!

वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थङ्करदेव जिन्हें पर्याय में, अवस्था में, हालत में, दशा में, स्वभाव के अन्तर आश्रय द्वारा पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतरागता प्रगट हुई, तब भगवान की इच्छा बिना वाणी निकली, उस वाणी में यह आया – ऐसा सन्त यहाँ फरमाते हैं। समझ में आया? योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि, जंगलवासी वन में रहते थे। उन्होंने कहा कि भाई! इस तेरी चीज का अनजान और परचीज के झुकाववाले तेरे चाहे जैसे पुण्य के भाव हों, वे तेरे आत्मा को बन्धन के लिए और भटकने के लिए हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु – एक मोक्ष नहीं मिलता?

उत्तर – बस! मोक्ष नहीं मिलता, यह भटकने का मिलता है – ऐसा कहते हैं। यह... धूल मिले, एक मोक्ष नहीं मिलता। ए... निहालभाई! यह कहते हैं। एक मोक्ष नहीं मिलता, बाकी तो सब मिले न! आत्मा की शान्ति नहीं मिलती, बाकी तो अशान्ति के ढेर मिले न! ऐसा। आहा...हा...! अरे...! तेरे इन्द्र के, देव के देवासन यह सब दुःख के कारण

हैं। तेरे पैसे धूल के ढेर, यह मेरे, उनके ऊपर लक्ष्य जाना वह आकुलता है, धूल है, वहाँ कहाँ (शान्ति है) ? एक मोक्ष नहीं मिले, बाकी सब भटकने का मिले। एक मोक्ष नहीं मिले इतना न ? धीरे से बड़ी हाँडी निकाल दे। दलाल है, दलाल। समझ में आया ? आहा...हा... ! कहाँ गये पोपटभाई ! गये ? गये लगते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ? आहा...हा... ! यह २९ वीं गाथा हुई।

देखो, शब्दार्थ में से तुम्हारे पाठ होता है न, उसमें से निकालते हैं। देखो ! **व्रत, तप....** यह व्याख्या की है। **संयम....** इन्द्रियदमन और **मूलगुण....** एक बार आहार लेना आदि **मूढह** परन्तु जो आत्मा के शुद्ध चिदानन्दस्वभाव से अनजान है – यह शब्दार्थ चलता है। है न श्लोक ? पुस्तक में है। **मोक्ख णिवुत्तु** उसे मोक्ष नहीं कहा, उसे संवर-निर्जरा नहीं कहा। **जाम ण जाणइ इक्क** जब तक भगवान आत्मा अपनी मूल चीज को नहीं जाने। **परु** प्रधान, **सुद्धउभाउ पवित्तु** महा शुद्ध भगवान आत्मा पवित्र है, उसका सम्यग्दर्शन और अनुभव न हो, तब तक यह सब इसके व्यर्थ एक बिना की शून्य, रण में पुकारने जैसा है। इसकी पुकार कोई नहीं सुनता ? और इसका रोना बन्द नहीं होता। समझ में आया ?

☆ ★ ☆

व्रती को निर्मल आत्मा का अनुभव करना योग्य है

जइ णिम्मल अप्पा मुणइ, वय-संजम-संजुत्तु।
तो लहु पावइ सिद्धि-सुह, इउ जिणणाहहँ उत्तु॥३०॥

जो शुद्धातम अनुभवे, व्रत संयम संयुक्त।
जिनवर भाषे जीव वह, शीघ्र होय शिवयुक्त॥ ३०॥

अन्वयार्थ – **(जइ वयसंजमुसंजुत्तु णिम्मल मुणइ)** जो व्रत, संयम सहित निर्मल आत्मा का अनुभव करे **(तो सिद्धि-सुह लहु पावइ)** तो सिद्ध या मुक्ति का सुख शीघ्र ही पावे **(इउ जिणणाहहँ उत्तु)** ऐसा जिनेन्द्र का कथन है।

☆ ★ ☆

३०, **व्रती को निर्मल आत्मा का अनुभव करना योग्य है।** ३० वीं गाथा

जइ णिम्मल अप्पा मुणइ, वय-संजम-संजुत्तु।
तो लहु पावइ सिद्धि-सुह, इउ जिणणाहहँ उत्तु॥३०॥

पुस्तक है न? भाई के पास है या नहीं? उसमें है श्लोक, इस श्लोक में है। यहाँ तो श्लोक में से (अर्थ करते हैं)। ३० वाँ **जो णिम्मल अप्पा मुणइ** है न? जो कोई आत्मा निर्मलानन्द प्रभु शुद्ध ज्ञानघन आत्मा को जो **मुणइ** अर्थात् जानता है, अन्तर निर्मल वस्तु शुद्ध चिद्घन है, उसे अनुसरण कर निर्विकल्प से आत्मा को अनुभव करता है। निर्विकल्प अर्थात् राग के मलिनता के विकल्प से मिश्रित दशा के बिना.... भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु को निर्मल अनुभव से जो अनुभव करता है। **'मुणइ' अप्पा मुणइ** अर्थात् अनुभव करता है। **वयसंजमु संजुत्तु** और उसमें भी उसे व्रत और संयम का भले व्यवहार हो परन्तु इस वस्तु सहित है तो उसे व्यवहार निमित्तरूप से वहाँ कहा जाता है। क्या कहा?

मुमुक्षु – मदद करे।

उत्तर – मदद किसने कही?

शुद्ध आत्मा अपना शुद्ध उपादान.... वह शुद्ध उपादान अर्थात् जिसमें से निर्मलता ग्रहण की जा सकती है – ऐसा यह भगवान, निर्मल आत्मा का जो अनुभव, वह उसका शुद्ध उपादान, मोक्ष का वास्तविक कारण वह है। उस काल में उसे व्रत, नियम का, निमित्त का व्यवहार होता है, तो उसे निमित्तरूप से यथार्थ लागू पड़ता है। सम्यग्दर्शन, अनुभव बिना के जो व्रतादि थे, वे तो निमित्तरूप भी नहीं कहे गये थे। यहाँ तो उन्हें निमित्तपना है – इतना सिद्ध करना है। समझ में आया? आहा...हा...!

जो कोई व्रत, संयम **संजुत्तु णिम्मल मुणइ। व्रत, संयम....** (अर्थात्) इन्द्रिय दमन **सहित निर्मल आत्मा का अनुभव करे.... 'तो सिद्ध सुहु लहु पावइ' 'तो लहु पावइ सिद्ध सुहु' 'लहु'** अर्थात् अल्प काल में, **लहु** अर्थात् शीघ्र काल में। **पावइ** अर्थात् प्राप्त करता है। **सिद्ध सुहु** (अर्थात्) सिद्ध परमात्मा का सुख। वह स्वयं आत्मा के अन्तर अनुभव में शुद्ध चैतन्य को अनुभव करता है, उसके साथ उसे व्रत, नियम के निमित्तरूप

विकल्प-व्यवहार होते हैं तो क्रम-क्रम से सब व्यवहार छोड़कर, अपने शुद्ध स्वरूप को, सिद्ध-सुख को प्राप्त करेगा। समझ में आया ?

यह सब कीमत जाती है आत्मा में। अब, वह आत्मा कैसा ? उसका इसे पता नहीं पड़ता। जो महिमा करने योग्य चैतन्यरत्न, वह इसे कुछ नहीं। यह देह-वाणी की क्रिया और दया-दान के परिणाम, जो कुछ महिमा करने योग्य नहीं हैं... आहा...हा... ! उनकी इसे महिमा और उनकी इसे महिमा... महिमा परन्तु भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ अनन्त आनन्द को प्राप्त हुए, वह सब निर्दोष दशाएँ प्राप्त हुईं, वे परमात्मस्वरूप में – अन्दर आत्मा में पड़ी है – ऐसा आत्मा यहाँ कहा है न!

णिम्मल अप्पा मुणइ ऐसा निर्मल भगवान आत्मा वर्तमान शाश्वत भाव-स्वभाव पवित्र वर्तमान शाश्वत् है। वर्तमान क्यों कहा ? शाश्वत् अर्थात् बाद में (ऐसा नहीं)। यहाँ वर्तमान शाश्वत् ध्रुव निर्मल भाव पड़ा है, उसे जो **मुणइ** अर्थात् अनुभव करता है। उसकी अन्तर्दृष्टि और आचरण है, वह भले व्रत, संयम, निमित्तरूप हो.... व्यवहार आचरण – उसे राग की मन्दता आदि हो परन्तु वह मोक्ष का वास्तविक कारण यह है और यह (मन्द राग) साथ में होता है तो इसे क्रमशः छोड़कर केवलज्ञान प्राप्त करेगा, सिद्ध सुख को प्राप्त करेगा। समझ में आया ?

निमित्तपना होता है। होता है (– ऐसा) यहाँ सिद्ध किया है। स्वरूप के शुद्ध उपादान की श्रद्धा-ज्ञान और आचरण की भूमिका में पूर्ण शुद्धता प्रगट नहीं हुई, इसलिए थोड़ी अशुद्धता का उस भूमिका के योग्य व्यवहार-राग की मन्दता होती है, उसे निमित्तरूप कहा जाता है। माल डाले उसकी थैली... माल डाले बिना थैली किसकी कहना ? जूट की यह थैली दाल, चावल की नहीं कहलाती, माल डाले तो कहलाती है कि यह दाल की थैली है, यह क्या तुम्हारे वे बड़े ढोल होते हैं न ? अब तो बड़े ढोल रखते हैं न अनाज के ? ढोल... ढोल... ढोल में बड़ी पोल.... बड़े ढोल रखते हैं या नहीं ? इसी प्रकार हारबंध (पड़े हों), दाल, चावल, और अमुक और अमुक ऊछड़ा.... यह सब अभी तो यह हो गया है परन्तु किसका ? यह सब देखा है और सब देखा है। किसकी (थैली) ? कि डाले उसकी। उसका क्या ? वहाँ क्या नाम लिखा है ? चावल डाले तो चावल का और दाल

डाले तो दाल का और शक्कर डाले तो शक्कर का (नाम लिखते हैं)। इसी प्रकार माल आत्मा अखण्डानन्द प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र का माल हो तो साथ में व्यवहार व्रतादि के विकल्प को थैली-वारदान कहा जाता है। आहा...हा...! ए... देवानुप्रिया!

मुमुक्षु – इसमें तो शर्त रखी है।

उत्तर – कहा न, शर्त रखी है न! उपादान को ऐसा निमित्त हो तो मुक्ति पावे। शुद्ध उपादान की वृद्धि करके.... ऐसा। समझ में आया? उसका कारण है। यह रखा है कि जहाँ आगे आत्मानुभव तो चौथे-पाँचवें में भी होता है, परन्तु यह विशेष अनुभव, स्थिरता है, वहाँ ऐसे विकल्प होते हैं, वहाँ स्थिरता विशेष (होती है), यह बताना है। समझ में आया? वरना सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में भी आत्मानुभव होता है परन्तु जहाँ व्रत, नियम के परिणाम हैं, उन्हें तो स्थिरता-अनुभव बहुत होता है, ऐसे बहुत को वजन देने के लिए उसके साथ व्रतसहित कहा गया है। समझ में आया? आहा...हा...! यह जोर देते हैं।

जहाँ आत्मा अपने पन्थ में अन्दर पड़ा, शुद्ध भगवान आत्मा के अन्तर मार्ग में चढ़ा परन्तु उस मार्ग में चढ़ने पर भी जहाँ तक उसे व्रत के परिणाम, जो विकल्प चाहिए ऐसी भूमिका के योग्य स्थिरता नहीं हुई.... समझ में आया? .....वहाँ तक उसे उग्र आचरणरूपी साधुपना नहीं होता और वह उग्र आचरण जहाँ होता है, वहाँ ऐसे विकल्प होते हैं। ऐसी बात सिद्ध करते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! ऐसा मार्ग वह कैसा यह? ऐसा वीतराग का मार्ग होगा? हैं? यह तो अभी तक सुना कि रात्रि भोजन नहीं करना, रोटियाँ नहीं खाना, अष्टमी-चतुर्दशी को उपवास करना, कन्दमूल नहीं खाना, आलू नहीं खाना, शकरकन्द नहीं खाना.... लो! ऐसी बात एक-एक बात ऐसी? यह पौन घण्टा होने आया, ए... शशीभाई! हैं?

मुमुक्षु – भगवान ऐसा कहते हैं।

उत्तर – भगवान ऐसा कहते है, देखो! यह कहते हैं, देखो! **जिणणाहह वुत्तु** है न? देखो! इसमें है। **सिद्ध सुहु लहु पावइ इउ जिणणाहह वुत्तु** ऐसा जिनेन्द्र का कथन है। है? ३० में, इसलिए तो आचार्य शब्द डालते जाते हैं कि जिनेन्द्रदेव वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ, सौ इन्द्र से पूजनीय, समवसरण के नायक... समझ में आया?.... लाखों

सन्तों के सूर्य-चन्द्र, लाखों साधुरूपी तारे उनमें तीर्थङ्कर जो चन्द्र, उनके मुख से यह वाणी (आयी है)। आहा...हा...! परन्तु कठिन, बापू! (हमने तो अभी तक ऐसा सुना है कि) यह करो, यह खाओ और यह पिओ, यह छोड़ो, यह त्यागो.... कौन छोड़े, रखे? सुन न! परवस्तु को कब पकड़ा था, कि उसे छोड़े? समझ में आया?

यहाँ तो अज्ञानभाव, स्वरूप का अभान और राग-द्वेष की जो अस्थिरता पड़ी है, उसे स्वभाव के भान से मिटाया जा सकता है। क्या भगवानभाई! ठीक, अब ठीक हुआ। नहीं तो भागते थे। आवे अवश्य हमारे दाँत के कारण, हैं? दाँत के कारण आवें, समधी को लेकर.... चतुर व्यक्ति हैं, चले और यहाँ फिर प्रेम भी थोड़ा अवश्य, परन्तु बैठे नहीं अन्दर से, वे कहें सामायिक-प्रौषध, प्रतिक्रमण और उपवास करें तो वह कोई धर्म न हो – ऐसा होगा? अरे...! बापू! भाई! तुझे पता नहीं है। सामायिक कहाँ रहती होगी, यह पता है उसे? सामायिक एक शब्द हुआ तो सामायिक का भाव कहाँ रहता होगा? पता है? और वह भाव क्या होगा? वस्तु होगी? शक्ति होगी? अवस्था होगी? विकार होगा? अविकार होगा? उसका काल कितना होगा? भगवान जाने.... ऐसे बैठे, वह (वह सामायिक)। वह सामायिक नहीं है, सुन न अब! वह सब मूढ़ की, अज्ञानी की सामायिक है। कहो, इसमें समझ में आया? आहा...हा...! समझे?

(यहाँ चलते विषय में) निमित्त की व्याख्या की है। **णवि एस मोक्खमग्गो** पीछे आधार दिया है। ३० वीं गाथा का मूल तो यह है कि **जिणणाहह वुत्तु।** वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थङ्करदेव ने समवसरण सभा में भगवान ऐसा कहते थे। आहा...हा...! कहो, समझ में आया? है न? **जिणणाहह** जिननाथ, वीतराग के नाथ अर्थात् तीर्थङ्करदेव.... ऐसा **वुत्तु** ऐसा कहते थे। **वुत्तु** अर्थात् कहना। ऐसा कहते थे कि जिसे भगवान आत्मा अनन्त चैतन्य आनन्द के रस से भरा प्रभु का जिसे अन्तर में अनुभव की उग्रता की चारित्रदशा-रमणता होती है, उसके साथ ऐसे निमित्त, उस समय में उग्र चारित्र में निमित्तरूप व्रतादि के परिणाम होते हैं, तो वह क्रम से राग का अभाव करके, शुद्धता को बढ़ाकर और पूर्ण सिद्धि के सुख को, मुक्ति के सुख को पायेगा। ऐसा जिननाथ ने वर्णन किया है। समझ में आया?

☆ ★ ☆

अकेला व्यवहारचारित्र वृथा है

वउ तउ संजमु सीलु जिय, ए सव्वइँ अकयत्थु।
जाव ण जाणइ इक्क परु, सुद्धउ भाउ पवित्तु॥३१॥

जब तक एक न जानता, परम पुनीत सुभाव।
व्रत-तप-संयम शील सब, निष्फल जानो दाव॥ ३१॥

अन्वयार्थ – **(जिउ)** हे जीव! **(जाव इक्क परू सुद्धउ पवित्तु भाउ ण जाणइ)** जब तक एक उत्कृष्ट शुद्ध वीतरागभाव का अनुभव न करे **(वय तव संजमु सीलु ए सव्वे अकइच्छु)** तब तक व्रत, तप, संयम, शील ये सर्व पालना वृथा है, मोक्ष के लिए नहीं है। पुण्य बाँधकर संसार बढ़ानेवाला है।

☆ ★ ☆

३१, **अकेला व्यवहारचारित्र वृथा है।** देखा? उसमें निमित्त रखा था, अब अकेला व्यवहारचारित्र व्यर्थ है – ऐसा कहते हैं।

वउ तउ संजमु सीलु जिय, ए सव्वइँ अकयत्थु।
जाव ण जाणइ इक्क परु, सुद्धउ भाउ पवित्तु॥३१॥

हे जीव! जिय शब्द पड़ा है न। **जिय** वह **जिय** अर्थात् जीव होता है। **हे जीव! जाम इक्क परु सुद्धउ पवितु भाउ ण जाणइ जब तक एक उत्कृष्ट शुद्ध वीतराग.... जाणइ इक्क परु शुद्धऊ पवित्तु भाउ ण जाणइ...** जब तक, ऐसा जहाँ तक.... **जाम** है न? **जाम** अर्थात् जब तक, ऐसा चाहिए मूल तो। इसमें **जाणइ** अर्थ किया है, **जाम** चाहिए, समझ में आया? **जाम** अर्थात् जब तक। **ण जाणइ इक्क परु** आत्मा का एक शुद्ध वीतरागभाव; एक भगवान आत्मा का वीतरागभाव, शुद्धभाव, आनन्दभाव – ऐसा एक आत्मा का अन्तरभाव, शुद्ध ध्रुव स्वभाव शाश्वत् आनन्द वीतरागभाव, ऐसे को **न जाने** वह फिर **ण जाणइ** आया। समझ में आया? **जाणइ ण जाणइ।** जब तक भगवान आत्मा के वीतरागस्वभाव, ऐसे शुद्धभाव को न जाने... शुद्धभाव को न

जाने, शुद्ध उपयोग प्रगट न करे, तब तक उसके सब व्यवहार व्रतादि व्यर्थ... व्यर्थ हैं। समझ में आया ?

उसमें (३० वीं गाथा में) आया था न ? यह **मुणइ वय।** तो फिर (ऐसा अर्थ हुआ कि) जहाँ उग्र शान्ति (और) अनुभव है, वहाँ व्रत, नियम कहा परन्तु नीचे अकेले व्रत (वह) धर्म और ऊपर अनुभव धर्म, भाई! इसमें ऐसा नहीं आया ? आया या नहीं ? ३०वीं गाथा में ? यह दो इकट्ठे हैं न ? तो भी ऐसा कहा **णिम्मल अप्पा मुणइ वयसंजमु संजुत्तु** – ऐसा कहा। दो साथ में ऐसा कहा.... ऐसा नहीं कहा कि व्रत, तप का पहला धर्म और निर्मल अनुभव का बाद का धर्म। हैं ? आहा...हा... ! ऐसा होता ही नहीं। परन्तु कितने ही पण्डित कहते हैं। अभी के सीखे हुए (– ऐसा कहते हैं)। अरे! भगवान! बाड़ बेल को खाती है, उस बेल को कहाँ जाना ? समझ में आया ? बाड़ बेल को खाये, बेल चढ़ने के लिए बाड़ का सहारा ले, बेल चढ़ने के लिए बाड़ का सहारा ले बाड़ खा जाये बेल को (अर्थात् रक्षक ही भक्षक हो जाए।)–ऐसे उपदेशक कैसे ? लाओ, हम सुनते हैं, कुछ कहे, वही पूरा सब उलटा.. सुननेवाले को–चढ़ने का बेल जाये कहाँ वह ? वे बेचारा कहे उस प्रकार, जय पण्डितजी! सच्ची बात तुम्हारी। रतनलालजी! ऐसा ही होता है। आहा..हा.. !

अरे! बाड़ बेल को खाये। दामोदरभाई ने कहा था जैतपुर। वे साधु थे न ? वेदान्त की श्रद्धा, हाँ! वेदान्त की। लींबड़ी... फिर इन्हें जैन की श्रद्धा अवश्य न ? वस्तु भले फेरवाली दृष्टि थी। इसलिए वह कहने लगा, यह साधु सुधरा हुआ दिखता है न ? बड़ा सेठ था न ? दशाश्रीमाली में दस लाख रुपये पचास वर्ष पहले किसी को नहीं थे। वह यहाँ दामनगर था, और स्वयं सेठ व्यक्ति जरा नरम जैसा, दूसरों को ऐसा कि मेरे जैसे बात इसे रुचेगी। निश्चय की ऐसी वेदान्त की बात करने लगा, सेठ ऐसा है, सेठ ऐसा है। सेठ ने सुना, हाँ! फिर बोला, अरे... महाराज! अरे! बाड़ बेल को खाये, बेल को कहाँ जाना ? होशियार था.... अरे! ऐसे जैन के वेश में रहकर मुँहपट्टी में रहकर तो वेदान्त की बात करो ? इन लोगों – जैनों को कहाँ जाना ? बेचारे दुःखी, तुम जानो कि यह मार्ग होगा, हाँ! कर देंगे... अरे! तुम क्या करते हो, पता नहीं पड़ता, कुछ पता नहीं पड़ता। फिर सिर पर बैठा वह..... कान्तिभाई!

यह बहुत वर्ष की बात है, हाँ! यह तो बहुत वर्ष की बात है। जैतपुर गये थे, सेठ

और वे नागजी। वे इस वेदान्त की बात करने लगे। एक आत्मा है और व्यापक है। यह जाने कि सुधरा हुआ है, सेठ व्यक्ति दिखता है, सुधरा हुआ है, फिर गाँव में बड़ा गृहस्थ ऐसा लगता है। (तब सेठ कहता है) अरे... महाराज! बाढ़ बैल को खाये, हाँ! मुँह पर कहा। अरे...! तुम साधु यह मुँहपट्टी लेकर बैठते हो, हाथ में रजोणू और तुम अद्वैत आत्मा की बात करो? यह भगवान द्वारा कथित अनन्त आत्मा, भगवान द्वारा कथित अनन्त परमाणु, यह सब छह द्रव्य और यह सब कहाँ गया? बल्लभदासभाई! हैं?

चलता है, भाई! यह तो अनन्त संसार अनन्त काल से ऐसे ही चलता है। आहा...हा...!

वय तव संजम सीलु – देखो! इतने शब्द लिये हैं। व्रत पाले, वैय्यावृत्त करे, देव -गुरु की विनय करे, शास्त्र का स्वाध्याय करे, इन्द्रियों का दमन करे (– यह) संयम की व्याख्या है। **सीलु** अर्थात् कषाय की मन्दता का स्वभाव; कोमल... कोमल... कोमल... कोमल राग मन्द स्वभाव, शील, ब्रह्मचर्य पाले, **जिय ए सव्वे अकइच्छु** – यह सब अकृतार्थ है; इनसे तेरा कुछ भी कार्य सिद्ध हो – ऐसा नहीं है। **जाणइ ण जाण इक्क** भगवान आत्मा, जिसमें पवित्रता का धाम, पवित्र भगवान आत्मा, उस पवित्र आत्मा के पवित्र शुद्धभाव को.... भाव है न? देखो न? **सुद्धऊ भावु पवित्तु** देखो! **परु सुद्धउ भाउ पवित्तु।** यह भगवान आत्मा वीतरागभाव, आनन्दभाव, शान्तभाव, अकषायभाव, स्वच्छभाव, प्रभुताभाव, परमेश्वरभाव – ऐसे अनन्त भाव का शुद्ध से भरा हुआ भगवान – ऐसे शुद्धभाव को जब तक अन्तर्मुख होकर न जाने, तब तक अज्ञानी का व्यवहारचारित्र वृथा है। कोरे कागज में एक बिना की शून्य, रण में पुकार मचाने जैसा (व्यर्थ) है। आहा...हा...! समझ में आया? रतिभाई! यह पढ़ाई किस प्रकार की?

पुण्य बाँधकर.... देखो! इन्होंने नीचे अर्थ किया है, थोड़ा, हाँ! **पुण्य बाँधकर संसार बढ़ानेवाले हैं।** इकतीस गाथा, नीचे अर्थ किया है। **पुण्य बाँधकर संसार बढ़ानेवाले हैं।** इन्होंने तो फिर नीचे यहाँ तक लिखा है; **सम्यग्दर्शन के बिना मन्दकषाय को भी वास्तव में शुभोपयोग नहीं कहा जा सकता।** नीचे है। वास्तव में शुभोपयोग नहीं कहा जाता। भगवान आत्मा, भगवान आत्मा अपना शुद्धभाव, जब तक उसके भण्डार की चाबी नहीं खोले, तब तक उसके इस शुभभाव के, इस शुभराग की क्रिया को

शुभोपयोग भी नहीं कहा जाता। दृष्टि मिथ्यात्व है, वह वास्तव में अशुभ ही परिणाम है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

इक्क परु सुद्धउ है न? उत्कृष्ट है न? उत्कृष्ट शुद्ध वीतरागभाव। आत्मा का स्वभाव-आत्मा का अन्तरस्वरूप उत्कृष्ट वीतरागभाव है और उसका अनुभव शुद्ध उपयोग भाव-शुद्ध-उपयोग भाव (है)। जब तक ऐसा भाव न करे, तब तक **वय तव सजमु सीलु व सव्वे इकच्छु** – यह सब अकृतार्थ है; मोक्ष के लिए अकार्य.... अकार्य.... अकार्य है। यह अकार्य किया परन्तु कार्य कुछ किया नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

नीचे थोड़ा किया है – **बाह्य अवलम्बन या निमित्त को उपादान मानना, वह मिथ्यात्व है।** ऐ...ई...! यह व्यवहार व्रतादि बाह्य अवलम्बन है। इस अवलम्बन को या निमित्त को उपादान मानना (मिथ्यात्व है)। यह अवलम्बन भी निमित्त है, इसे उपादान मानना, इसे अपना शुद्धस्वरूप मानना, (वह) मिथ्यात्व है। समझ में आया? कितना ही ठीक लिखा है, फिर निमित्त आवे, तब जरा गड़बड़ करते हैं। **कोई करोड़ों जन्मों तक व्यवहार चारित्र पालन करे तो भी वह मोक्ष का मार्ग नहीं है।** समझ में आया? कोई करोड़ों जन्मों तक पालन करे – व्रत, नियम और ऐसी बाह्य तपस्यायें करे परन्तु भगवान आत्मा के अन्तर अनुभव और सम्यग्दर्शन के बिना वह चार गति में भटकने के पंथ में ही वह पड़ा है। समझ में आया?

देखो! यह चारित्र की व्याख्या की है। 'द्रव्यसंग्रह' की गाथा है। यह व्यवहारनय का चारित्र है। निश्चय स्वरूप की दृष्टि और चारित्र होवे तो अशुभ से निवृत्तमान ऐसे शुभभाव को व्यवहारचारित्र कहा जाता है। समझ में आया? शुभाशुभपरिणाम से निवृत्ति और भगवान आत्मा की दृष्टिसहित के शुद्धोपयोग की रमणता करे, उसका नाम वास्तविक चारित्र है और उसके साथ अशुभ से निवृत्तकर शुभभाव होवे, उसे व्यवहारचारित्र (कहते हैं)। व्यवहारचारित्र, बन्ध का कारण है; निश्चयचारित्र, संवर-निर्जरा का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु – क्रिया करने से अमुक भव में तो लाभ होता होगा न?

उत्तर – नहीं, नहीं; अनन्त भव तक.... अनन्त भव तक आत्मा के सन्मुख बिना की क्रिया अनन्त बार करे तो उसे कुछ लाभ नहीं होता। यह करोड़ तो एक अंक रखा है। कोरे कागज में चाहे जितने शून्य लिखा करे तो ईकाई नहीं आती, फिर करोड़ शून्य लिखो – ऐसा कहो या अनन्त शून्य लिखो – ऐसा कहो (– सब एकार्थ है)। समझ में आया? मोक्षपाहुड़ की गाथा दी है, यह जरा ठीक है। वह समयसार की दी है, वह अच्छी दी है। यह दी है, वह ठीक है।

आत्मा का स्वभाव है, आत्मा का द्रव्यस्वभाव है, उस द्रव्यस्वभाव से परिणमना, वह मोक्ष का कारण है और रागादि तो परद्रव्यस्वभाव है। विकल्प, पञ्च महाव्रत, दया, दान आदि के विकल्प तो परद्रव्यस्वभाव है। वह परद्रव्यस्वभाव तो दुर्गति है, बन्धन है। स्वद्रव्यस्वभाव से स्वगति है। (मोक्षपाहुड में कहा है कि)

जो पुण परदव्वरओ मिछ्छआदिट्ठी हवेइ सो साहू।
मिच्छत्त परिणदो उण वज्झदि दुटुटुकम्मेहिं॥ १५॥

ओ...हो....! लो! आचार्यों ने तो शास्त्र में बहुत काम रखा है? परन्तु गिने तब न! हैं? निभर हो गया, निभर। मुनर हो गया। मुनर नहीं कहते? हैं? ऐसे हुँकार करे नहीं, परन्तु ऊह.... तो कर। ऐसे इसे चाहे जितनी सत्य की बात कान में आवे परन्तु मूढ़ अन्तर ढलता नहीं-ढलता नहीं। नहीं, ऐसा होता है; नहीं, ऐसा होता है – ऐसा कहे। नहीं, नहीं, यह ऐसे होता है। यह झूठ ठहराना चाहता है। आहा...हा...! अरे... प्रभु! तू कहाँ जाएगा? भाई! आहा...हा...! मार्ग तो 'एक होय तीन काल में' 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ' – कहीं दो मार्ग होते हैं? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव द्वारा कथित निश्चय स्वाश्रय मार्ग, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? पराश्रित, वह मोक्षमार्ग नहीं है।

☆ ★ ☆

पुण्य पाप दोनों संसार है

पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ, पावएँ णरय-णिवासु।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ, तो लब्भइ सिववासु॥३२॥

स्वर्ग प्राप्ति हो पुण्य से, पापे नरक निवास।
दोऊ तजि जाने आतम को, पावे शिववास॥ ३२॥

अन्वयार्थ – (जिउ पुण्णिं सग्ग पावएँ) यह जीव पुण्य से स्वर्ग पाता है **(पावइ णरयणिवासु)** पाप से नरक में जाता है **(वे छंडिवि अप्पा मुणइ)** पुण्य-पाप दोनों से ममता छोड़कर जो अपने आत्मा का मनन करे **(तउ सियवासु लब्भइ)** तो शिव महल में वास पा जावे।

☆ ★ ☆

३२; **पुण्य पाप दोनों संसार है।**

पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ, पावएँ णरय-णिवासु।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ, तो लब्भइ सिववासु॥३२॥

पुण्णि पावइ सग्ग यह शुभभाव – दया, दान, व्रत, भक्ति करे तो पुण्य से स्वर्ग मिले; यह धूल; स्वर्ग की, देव की धूल। समझ में आया? और **पावइ णरयणिवासु** यदि पाप करे तो नरक में जाए। नीचे नरकगति है। पाप करे तो नरक में जाए, पुण्य करे तो स्वर्ग में जाए। समझ में आया? शुभभाव ऐसे व्रत, तप, नियम, शील, संयम कहा न? ऐसे भाव करे तो स्वर्ग में जाए। यह सेठ पाँच-दस करोड़ के, इसके कारण जरा उजला दिखे, परन्तु है तो सब धूल और धूल, वहाँ भी। हैं? दो-पाँच करोड़वाले सेठ उजले लगते हैं न? आहा...हा...! फूले-फूले समाते नहीं, आगे बिठायें। इन्हें कहाँ पैसा है? इसके लड़के के पास है, इसे कहाँ है? यह तो यहाँ रसोई का अधिकारी है, इसलिए मुँह के आगे है। ऐ...ई...! सेठ तो इसका लड़का सेठ है। उसके पास दो करोड़ रुपये हैं, लड़के के पास दो करोड़ हैं। इसे तो दो लड़के थोड़ा हिस्सा देते होंगे। कहते थे, बापूजी का हिस्सा है। दोनों लड़के अलग हो गये हैं। एक के पास दो करोड़ और एक के पास एक करोड़ है, इन भाईसाहब के। यह उनका पिता है। लड़कों का पिता 'पूनमचन्द मलूकचन्द', मुम्बई – दो करोड़ रुपये। वह यह मलूकचन्द। इनके पिता यह छोटालाल। धूल में भी नहीं, सब दुःखों से पीड़ित हैं, हैरान.... हैरान.... हैं।

वे पोपटभाई गये नहीं अभी ? कहा नहीं ? कैसा ? 'गोवा'। 'शान्तिलाल खुशालदास' अपने दशाश्रीमाली, हाँ! चालीस करोड़ रुपये नगद। पचास हजार की एक दिन की आमदनी है। धूल में भी हर्ष नहीं, हैरान... हैरान बेचारा पूरे दिन। हैं ? यह कहते हैं कि पुण्य से स्वर्ग मिले या धूल, सेठपना मिले। इसके पुरुषार्थ से नहीं, हाँ! यह जानता है कि मैंने पुरुषार्थ किया, इसलिए हमें अच्छा मिला। इसने धूल में भी मेहनत करके मर जाए तो पाँच हजार भी नहीं मिलते और दूसरे को करोड़ों रुपये सामने आकर भटकते हैं। यह तो पूर्व के पुण्य के रजकणों का उदय आवे तो गोटी जम जाती है। यह मूढ़ जानता है कि मैंने मेहनत की, इसलिए मिला। मूढ़ता में बड़ा बैल है। ऐ...ई.... ! आहा...हा... !

आचार्य भगवान कहते हैं कि बापू! पुण्य करेगा तो यह धूल मिलेगी, ले! स्वर्ग और सेठ। यह पाप करेगा तो **णरयणिवासु।** हिंसा, झूठ, चोरी, भोग, वासना, काम, क्रोध, महा विषय-वासना, विकार, परस्त्री लम्पटपना, शराब (पीना), माँस खाना – ऐसे भाव होंगे तो नरक में जाएगा। **छंडिदि** परन्तु दोनों को छोड़कर आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र करेगा तो मोक्ष जाएगा। दो (पुण्य-पाप) के द्वारा मोक्ष नहीं जाया जाता। इसकी बात करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

दिगम्बर साधु पात्र रखते ही नहीं....

जिसे मुनिपने की संवरदशा होती है, उसे वस्त्र-पात्र ग्रहण करने की वृत्ति हो ही नहीं सकती और जिसे वस्त्र-पात्र की वृत्ति हो, उसे मुनिपने की संवरदशा नहीं हो सकती। फिर भी जो वस्त्र-पात्रवाले को मुनि मानता है तो उसकी प्रत्येक तत्त्व में भूल है। भाई! सत्य बात तो ऐसी है। क्या यह किसी का कल्पित मार्ग है ? नहीं; यह तो वीतराग का मार्ग है, वस्तुस्वरूप ऐसा है।

प्रश्न - क्या दिगम्बर साधु पात्र रखते हैं ?

उत्तर - दिगम्बर साधु पात्र रखते ही नहीं, वे पानी का कमण्डलु रखते हैं, तथापि वह पानी पीने के लिए नहीं होता। पीने के लिए वह पानी हो ही नहीं सकता, वह तो शौच के लिए है।

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी